महर्षि दयानन्द सरस्वती का शिक्षा दर्शन

डॉ पुष्पिन्दर जोशी*

सारांश -

दयानन्द की मूल्यपरक शिक्षा पद्धति में विविध विषयों का समावेश किया गया है जैसे धर्मपरायणता, नैतिकता, सदाचार, योग, संगीत, ललित-कलाएं, पदार्थ-विज्ञान, कला-कौशल इत्यादि। इसके साथ ही उन्होंने अपनी शिक्षा पद्धति द्वारा राष्ट्रीय भावना, समाज-सुधार एवं लोकोपकार जैसे सद्भावों को भी प्रचारित एवं प्रसारित करने का प्रयास किया। दयानन्द शिक्षा पद्धति वैदिक शिक्षा पद्धति को आधार बनाकर मनुष्य निर्माण एवं जीवनमूल्यों पर विशेष बल देती है। क्योंकि पवित्रता का प्रसार, हृदय-शोधन, चरित्र-निर्माण, व्यक्तित्व का विकास, नागरिकता तथा सामाजिकता का ज्ञान, राष्ट्रीय संस्कृति की सुरक्षा तथा भौतिक उन्नति वैदिक शिक्षा केमुख्य उद्देश्य थे। अत: दयानन्द ने अपनी शिक्षा पद्धति में मानव जीवन से जुड़े हुए सभी विषयों को सम्मिलित करते हुए विद्यार्थियों को 'आर्य' बनाने का प्रयास किया ताकि वे राष्ट्र के उत्थान में सहयोग कर सकें। स्वामी दयानन्द ने अपने कई ग्रंथों में भारत के गौरवशाली इतिहास का वर्णन किया है। अंग्रेजों की प्रचलित शिक्षा नीति से आत्मविश्वास खो चुके भारतीयों को जागृत करने हेतु उन्होंने तत्कालीन परिस्थितियों के अनुसार अपनी शिक्षा पद्धति के माध्यम से पुरातन वैदिक शिक्षा एवं व्यवस्था को पुनः स्थापित करने का प्रयास किया।जिन तत्त्वों से राष्ट्रीय भावना का निर्माण होता है,उनमें धर्म,भाषा और संस्कृति का विशेष महत्त्व है। इसीलिए दयानन्द ने इन्हीं तत्वों को सबसे अधिक महत्व दिया। क्योंकि अंग्रेज यह भलीभांति समझते थे कि अंग्रेजी भाषा और साहित्य के अध्ययन तथा क्रिश्चिएनिटी के प्रचार के कारण भारतीयता की भावना में शिथिलता आ जाएगी, भारत के लोग अंग्रेजी रहन-सहन,आचार-विचार और क्रिश्चियन मन्तव्यों को अपनाने लगेंगे,अंग्रेजों की सभ्यता व संस्कृति को ऊँचा समझने लगेंगे और अपने को उनकी तुलना में हीन मानने लगेंगे। दयानन्द ने अंग्रेजों कीऐसी कूट नीतियों के विरुद्ध भारतीयों के लिए पुनर्जागरण का प्रयास किया।

कुञ्जी शब्द - महर्षि दयानन्द सरस्वती, शिक्षा दर्शन, मूल्यपरक शिक्षा, धर्मपरायणता, नैतिकता, सदाचार, योग, संगीत, ललित-कलाएं, पदार्थ-विज्ञान, कला-कौशल, राष्ट्रीय भावना, समाज-सुधार, लोकोपकार, वैदिक शिक्षा, जीवनमूल्य, चरित्रनिर्माण, व्यक्तित्व विकास, अंग्रेज, अंग्रेजी भाषा, क्रिश्चिएनिटी भारतीयता, पुनर्जागरण।

प्रस्तावना -

शिक्षा का सर्वोपरि लक्ष्य विकासशील मानव का निर्माण करना है। वस्तुतः शिक्षा एक ऐसी सतत् प्रक्रिया है जो आजीवन चलती है। परिवर्तनशील समय के साथ-साथ शिक्षा के स्वरूप में परिवर्तन भी अवश्यभावी है। प्रत्येक राष्ट्र की उन्नति के लिए उसकी शिक्षा पद्धति में राष्ट्रीय आवश्यकताओं एवं भावनाओं का सम्मिलित होना आवश्यक है। युगप्रवर्तक स्वामी दयानन्द सरस्वती ऐसे व्यक्तित्व थे जिन्होंने 19वीं शताब्दी के उत्तरार्ध में तत्कालीन परिस्थितियों को देखते हुए शिक्षा के क्षेत्र में ऐसी क्रांति फैला दी जिसने भारतीय शिक्षा पद्धति को नवीन दिशा प्रदान की। उन्होंने प्राचीन वैदिक ज्ञान एवं मूल्यों को पुनः स्थापित करने के लिए अथक प्रयास किए। स्वामी दयानन्द सरस्वती ने ऐसा शिक्षा दर्शन का निर्माण किया जिसमें प्राचीन भारतीय संस्कृति के साथ-साथ आधुनिक विज्ञान का भी समावेश था। उनके अनुसार शिक्षा ऐसी होनी चाहिए जिसमें जीवन के सैद्धांतिक एवं व्यवहारिक दोनों पक्षों में सामंजस्य स्थापित करने की योग्यता हो। स्वामी दयानन्द ने प्रत्येक व्यक्ति के लिए सुशिक्षा और विद्या प्राप्ति को परम आवश्यक, सर्वाधिक सुखद, उन्नतिकारक, उत्तम गुण और सर्वोत्तम कर्म माना है। उनकी दृष्टि में सब का शिक्षित होना अनिवार्य है। इसलिए इन्होंने स्पष्ट रूप से कहा है कि जो अपनी सन्तानों को शिक्षित नहीं करते वे उनके हितैषी नहीं, अपितु शत्रु हैं। इस प्रकार स्वामी जी के अनुसार शिक्षा प्राप्ति एक अनिवार्य कर्म है। इसका फल सुख और आनन्द है जिस से व्यक्ति, परिवार, समाज और देश की उन्नति सुनिश्चित है।[1] शिक्षा को परिभाषित करते हुए दयानन्द कहते हैं कि **"जिससे मनुष्य विद्या आदि शुभ गुणों की प्राप्ति और अविद्या आदि दोषों को छोड़कर सदा आनंदित हो सकें वह शिक्षा कहलाती है"।** [2]

दयानन्द के अनुसार विद्या द्वारा यथार्थ ज्ञान से युक्त होकर,यथा योग्य व्यवहार करने-कराने से आप और दूसरों को आनंद युक्त करना विद्या का फल है क्योंकि बिना विद्या के किसी मनुष्य को निश्चल सुख नहीं हो सकता।[3] इस प्रकार दयानन्द ने शिक्षा को मानव की उन्नति एवं स्थायी आनन्दके स्रोत के रूप में स्वीकार किया।

- **स्वामी दयानन्द के अनुसार शिक्षा के मूल तत्व -**

देश की तत्कालीन परिस्थितियों का गम्भीरता से अवलोकन करने और पर्याप्त चिन्तन-मनन करने के उपरान्तदूरदर्शी शिक्षाशास्त्री महर्षि दयानन्द इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि अंग्रेजों द्वारा प्रवर्तित मैकाले की शिक्षा पद्धति से भारत का उत्थान और कल्याण नहीं हो सकता। वे अंग्रेजों की कूटनीति को समझ चुके थे। क्योंकि उस पद्धति से भारत की स्वभाषा, स्वदेशप्रेम, स्वसंस्कृति-सभ्यता, राष्ट्राभिमान, स्व-परम्पराओं का विलोप किया जा रहा था और नैतिकता तथा धर्माचरण का ह्रास हो रहा था। अतः उन्होंने प्राचीन आश्रमपद्धति और पठन-पाठन-विधि को ही भारत के पुनरुद्धार,उन्नति तथा सुख के लिए उपयोगी माना इसलिए अपने ग्रन्थों में उसकी रूपरेखा प्रस्तुत की और उसके प्रवर्तन,प्रचार-प्रसार के लिए अनेक प्रयास भी किये।[4]

दयानन्द की मूल्यपरक शिक्षा पद्धति में विविध विषयों का समावेश किया गया है जैसे धर्मपरायणता, नैतिकता, सदाचार, योग, संगीत, ललित-कलाएं, पदार्थ-विज्ञान, कला-कौशल

इत्यादि। इसके साथ ही उन्होंने अपनी शिक्षा पद्धति द्वारा राष्ट्रीय भावना, समाज-सुधार एवं लोकोपकार जैसे सद्भावों को भी प्रचारित एवं प्रसारित करने का प्रयास किया। दयानन्द शिक्षा पद्धति वैदिक शिक्षा पद्धति को आधार बनाकर मनुष्य निर्माण एवं जीवनमूल्यों पर विशेष बल देती है। क्योंकि पवित्रता का प्रसार, हृदय-शोधन, चरित्र-निर्माण, व्यक्तित्व का विकास, नागरिकता तथा सामाजिकता का ज्ञान, राष्ट्रीय संस्कृति की सुरक्षा तथा भौतिक उन्नति वैदिक शिक्षा केमुख्य उद्देश्य थे।[5] अत: दयानन्द ने अपनी शिक्षा पद्धति में मानव जीवन से जुड़े हुए सभी विषयों को सम्मिलित करते हुए विद्यार्थियों को 'आर्य' बनाने का प्रयास किया ताकि वे राष्ट्र के उत्थान में सहयोग कर सकें। उनकी शिक्षा पद्धति के कतिपय आधारभूत तत्वों का वर्णन निम्नलिखित है :-

1. संस्कार :

शिक्षा एवं संस्कारों का गहन संबंध है। साधारणतया शिक्षित मनुष्यों से संस्कारित होने की भी अपेक्षा की जाती है।मानव जीवन की उन्नति में संस्कारों का विशिष्ट महत्व है। इसलिए मानव की शारीरिक, मानसिक तथा आत्मिक उन्नति के लिए जन्म से लेकर मृत्युपर्यन्त भिन्न-भिन्न समय पर संस्कारों की व्यवस्था प्राचीन ऋषि-मुनियों ने बहुत ही सुंदर ढंग से की है।[6]

स्वामी दयानन्द सरस्वती ने शिक्षा मेंसंस्कारों को परमोपयोगी समझकर ही प्राचीन ऋषि-मुनियों की पद्धति का अनुसरण करके संस्कारों पर 'संस्कार-विधि'नामक पृथक् ग्रंथ की रचना की। उनके अनुसार "जिसके शरीर और आत्मा सुसंस्कृत होने से धर्म,अर्थ,काम और मोक्ष को प्राप्त हो सकते हैं और संतान अत्यंत योग्य होते हैं। इसलिए संस्कारों का करना सब मनुष्यों को अति उचित है।[7]

संस्कार को परिभाषित करते हुए दयानन्द कहते हैं - संस्कार उसको कहते हैं कि जिससे शरीर,मन और आत्मा उत्तम होवे।

दयानन्द के अनुसार माता-पिता के पवित्र आचरण एवं शिक्षित होने का बच्चे पर बहुत प्रभाव पड़ता है। क्योंकि मानव जीवन से जुड़े हुए महत्वपूर्ण 16 संस्कारों में से प्रथम तीन संस्कार बच्चे के जन्म से पूर्व ही किए जाते हैं।यदि बच्चे के पूर्व जन्म के संस्कार भी उत्तम हो,गर्भावस्था में भी माता-पिता के उत्तम संस्कार पड़े हों और जन्म के बाद भी उत्तम वातावरण प्राप्त हो जाए,तो ऐसे बच्चे महाभाग्यशाली होते हैं। दयानन्द के अनुसार—'वह सन्तान बड़ा भाग्यवान्,जिसके माता और पिता धार्मिक और विद्वान् हों[8]

इस प्रकार दयानन्द ने शिक्षा के साथ-साथ मानव जीवन में संस्कारों की भी महत्वपूर्ण भूमिका स्वीकार की है।

2. धर्म

विद्या और विज्ञान के साथ धर्म की अनादि मित्रता को दयानन्द ने पुनः संस्थापित किया। मनुस्मृतिसे उदाहरण लेते हुए उन्होंने धर्म के स्वरूप को स्पष्ट करते हुए कहा-

श्रुतिस्तु वेदो विज्ञेयो धर्मशास्त्रं तु वै स्मृतिः।
ते सर्वार्थेष्वमीमांस्ये ताभ्यां धर्मो हि निर्बभौ॥[9]

'श्रुति' वेद और 'स्मृति' धर्मशास्त्र को कहते हैं, इनसे सब कर्त्तव्याऽकर्त्तव्य का निश्चय करना

चाहिये,क्योंकि इनमें धर्म का प्रकाश हुआ है ॥

वेदः स्मृतिः सदाचारः स्वस्य च प्रियमात्मनः ।
एतच्चतुर्विधं प्राहुः साक्षाद्धर्मस्य लक्षणम् ॥[10]

इसलिये वेद, स्मृति, सत्पुरुषों का आचार और अपने आत्मा के ज्ञान से अविरुद्ध प्रियाचरण, ये चार धर्म के 'लक्षण' हैं अर्थात् इन्हीं से धर्म लक्षित होता है ।

दयानन्दधर्म को परिभाषित करते हुए कहते हैं कि जो न्याय अर्थात् पक्षपात को छोड़ के सत्य का आचरण और असत्य का परित्याग करना है, उसीको धर्म कहते हैं। यही धर्म का स्वरूप और असत्य का परित्याग करना है,उसीको धर्म कहते हैं। यही धर्म का स्वरूप और सबसे उत्तम धर्म है ।

स्वामी दयानन्द ने अपने कई ग्रंथों में भारत के गौरवशाली इतिहास का वर्णन किया है। अंग्रेजों की प्रचलित शिक्षा नीति से आत्मविश्वास खो चुके भारतीयों को जागृत करने हेतु उन्होंने तत्कालीन परिस्थितियों के अनुसार अपनी शिक्षा पद्धति के माध्यम से पुरातन वैदिक शिक्षा एवं व्यवस्था को पुनः स्थापित करने का प्रयास किया ।जिन तत्त्वों से राष्ट्रीय भावना का निर्माण होता है,उनमें धर्म,भाषा और संस्कृति का विशेष महत्त्व है। इसीलिए दयानन्द ने इन्हीं तत्वों को सबसे अधिक महत्व दिया। क्योंकि अंग्रेज यह भलीभांति समझते थे कि अंग्रेजी भाषा और साहित्य के अध्ययन तथा क्रिश्चिएनिटी के प्रचार के कारण भारतीयता की भावना में शिथिलता आ जाएगी, भारत के लोग अंग्रेजी रहन-सहन,आचार-विचार और क्रिश्चियन मन्तव्यों को अपनाने लगेंगे,अंग्रेजों की सभ्यता व संस्कृति को ऊँचा समझने लगेंगे और अपने को उनकी तुलना में हीन मानने लगेंगे ।[11] दयानन्द ने अंग्रेजों कीऐसी कूट नीतियों के विरुद्ध भारतीयों के लिए पुनर्जागरण का प्रयास किया ।

स्वामी दयानन्द सरस्वती ने सत्यार्थ प्रकाश में मनुष्य के आत्मबल एवं आत्म संयम को राष्ट्र की उन्नति के लिए आवश्यक बताते हुए कहा है कि- मनुष्य का यही मुख्य आचार है कि जो इन्द्रियाँ चित्त को हरण करने वाले विषयों में प्रवृत्त कराती हैं, उनको रोकने में प्रयत्न करें। जैसे घोड़ों को नियन्त्रित कर सारथी शुद्ध मार्ग में चलाता है,इस प्रकार इनको अपने वश में करके, अधर्म मार्ग से हटा के धर्म मार्ग पर सदा चलाया करे। यथा -

इन्द्रियाणां विचरतां विषयेष्वपहारिषु ।
संयमे यतमातिष्ठेद्विद्विन्यन्तेव वाजिनाम् ॥[12]

एक अन्य उदाहरण में वे कहते हैं-

जैसे अग्नि में इन्धन और घी डालने से बढ़ता जाता है,वैसा ही कामों के उपभोग से काम शान्त कभी नहीं होता, किन्तु बढ़ता ही जाता है। इसलिए मनुष्य को विषयासक्त - कभी नहीं होना चाहिए। यथा-

न जातु कामः कामानामुपभोगेन शाम्यति ।।
हविषा कृष्णावर्त्मेव भूय एवाभिवर्द्धते ।[13]

इस प्रकार दयानन्द के अनुसार प्रत्येक मनुष्य के लिए आत्मिक उन्नति एवं बल आवश्यक है जिससे सामाजिक उन्नति संभव हो सके ।

- **दयानन्द की शिक्षा दर्शन में पठन-पाठन व्यवस्था, पाठ्यक्रम एवं शिक्षण विधियां -**

1) पठन-पाठन व्यवस्था -

पठन-पाठन व्यवस्था के संदर्भ में दयानन्द ने अपनी पुस्तक व्यवहारभानु की भूमिका में स्पष्ट उद्घोष किया है कि इसको रचने का उद्देश्य मात्र इतना है कि इससे प्रेरित होकर मनुष्य स्वयं का, अपनी संतान का और विद्यार्थियों का आचरण उत्तम करे जिसके परिणाम स्वरूप मनुष्य स्वयं भी सुखी रहेगा और संतान एवं विद्यार्थी भी सुखी रहेंगे।[14]

स्वामी दयानन्द सरस्वती ने शिक्षा पद्धति के मूलभूत तत्वों का वर्णन करते हुए कहा है कि माता को गर्भावस्था से ही बालक की औपचारिक शिक्षा एवं संस्कार के विषय में सजग रहना चाहिए। बालक की प्रारंभिक शिक्षा गृह से ही उसके माता-पिता द्वारा संचालित होनी चाहिए। 5 वर्ष की आयु तक बालक को माता शिक्षित करें,आठ वर्ष तक पिता द्वारा बालक को शिक्षित किया जाए इसके पश्चात् उसे गुरु के पास शिक्षा ग्रहण करने के लिए भेजा जाए।बालक की औपचारिक शिक्षा उपनयन संस्कार के बाद आरम्भ होनी चाहिए। 8 वर्ष की आयु में बालक तथा बालिकाओं को पाठशाला में भेज देना चाहिए।पाठशाला नगर से 5 मील की दूरी पर किसी शांत स्थान पर स्थित होनी चाहिए। बालक तथा बालिकाओं के लिए अलग-अलग पाठशालाएं होनी चाहिए।[15] शिक्षा के द्वारा अवश्य रूप से बालक गुणों को प्राप्त करें तथा दोषों का त्याग करें।

उन्होंने बालक के गर्भकाल से लेकर 25 वर्ष की आयु तक की शिक्षानिश्चित की है। उनके अनुसार स्वाध्याय,उपदेश,व्याख्यान और वाद-विवाद प्रमुख शिक्षण विधियां है।वह कठोर दंड व्यवस्था तथा गुरुकुल परंपरा के समर्थक थे। शारीरिक,मानसिक और नैतिक विकास करना ही उनके अनुसार शिक्षा का मुख्य उद्देश्य होना थाजिससे एक आदर्श नागरिक का निर्माण हो।उनके अनुसार बालक आरोग्य, बल,बुद्धि,पराक्रम और सुशीलता को प्राप्त करें। जो जो विद्या धर्म विरुद्ध प्रति जाल में गिराने वाले व्यवहार है बालकों को उनका भी उपदेश कर दें जिससे बालक को भूत-प्रेत आदि मिथ्या बातों का विश्वास न हो। 9वें वर्ष के आरम्भ में द्विज अपने सन्तानों का उपनयन करके जैसे अन्य शिक्षा है वैसे चोरी-जारी, आलस्य, प्रमाद, मादक द्रव्य, मोह आदि दोषों के छोड़ने और सत्याचार के ग्रहण करने की शिक्षा देने की कोशिश करें।[16]

2) पाठ्यक्रम -

स्वामी दयानन्द सरस्वतीके अनुसार शिक्षा के पाठ्यक्रम के अन्तर्गत वेद,वेदांतों,उपनिषदों तथा अन्य धार्मिकग्रंथों को शामिल किया जाना चाहिए। स्वामी दयानन्द सरस्वती ने अपनी शिक्षापद्धति में पाठ्यक्रम पर भी विस्तारपूर्वक चर्चा की है।

स्वामी दयानन्द सरस्वती ने शिक्षा पद्धति में नैतिक मूल्यों एवं जीवन उन्नयन पर विशेष बल दिया। इसीलिए उन्होंने मनुस्मृति,वाल्मीकि रामायण और महाभारत के उद्योगपर्व के अन्तर्गत विदुरनीति आदि जैसे उत्तम प्रकरण पढ़ने का उपदेश दिया जिनसे कि बुरी आदतें दूर हो और उत्तम सभ्यता प्राप्त हो सके। इन ग्रन्थों को पाठ्यक्रम में रखने का उद्देश्य विद्यार्थियों में उन चारित्रिक विशेषताओंको पैदा करना था जो इन ग्रन्थों के अनुकरणीय पात्रों में थी। दयानन्द सरस्वती के अनुसार विद्यार्थी इनको वर्ष के भीतर पढ़ लें। तत्पश्चात् वेदनित्यता को सिद्ध करने वाले पूर्वमीमांसा

को पढ़ने का उपदेश किया है। वस्तुत वेद के विविध पक्षों पर विचार करने वाला यह मुख्य शास्त्र है।

विद्या में तार्किक ज्ञान के महत्व को समझते हुए दयानन्द सरस्वती ने वैशेषिक एवं न्यायशास्त्र को पढ़ने का उपदेश किया।[17] अद्यतन तो प्रमुख प्रतियोगी परीक्षाओं में परीक्षार्थी के तार्किक ज्ञान को विशेषरूपसेपरखाजाता है। इससे पाठ्यक्रम में तर्कशास्त्र को निर्धारित करने की दयानन्द की दूरदर्शिता दृष्टिगोचर होती है।

स्वामी दयानन्द सरस्वती ने शिक्षण विधियों की चर्चा करते हुए विद्या प्राप्ति के लिए चार प्रकार के कर्मों का वर्णन किया है- 1. श्रवण 2. मनन 3. निदिध्यासन 4. साक्षात्कार

'श्रवण' उसको कहते हैं कि आत्मा मन के और मन श्रोत्र इन्द्रिय के साथ युक्त करके,अध्यापक के मुख से जो-जो अर्थ और सम्बन्ध के प्रकाश करने शब्द निकलें,उनको श्रोत्र से मन और मन से आत्मा में एकत्र करते जाना।

'मनन' उसको कहते हैं कि जो-जो शब्द,अर्थ और सम्बन्ध आत्मा में एकत्र हुए हैं,उनका एकान्त में स्वस्थचित्त होकर विचार करना कि कौन शब्द किस अर्थ के साथ और कौन अर्थ किस शब्द के साथ सम्बन्ध अर्थात् मेल रखता और उनके मेल में किस प्रयोजन की सिद्धि और उलटे होने में क्या-क्या हानि होती है।

'निदिध्यासन' उसको कहते हैं कि जो-जो शब्द, अर्थ और सम्बन्ध सुने विचारे हैं कि ठीक-ठीक हैं वा नहीं ? इस बात की विशेष परीक्षा करके दृढ़ निश्चय करना।

'साक्षात्कार' उसको कहते हैं कि जिन अर्थों के शब्द और सम्बन्ध सुने,विचारे और निश्चय किये हैं,उनको यथावत् ज्ञान और क्रिया से प्रत्यक्ष करके व्यवहारों की सिद्धि से अपना और पराया उपकार करना आदि विद्या की प्राप्ति के साधन हैं।"[18]

दयानन्द अपने ग्रंथ व्यवहारभानु में प्रश्नोत्तर के माध्यम से विद्या ग्रहण करने की रीति पर प्रकाश डालते हुए कहते हैं कि आचार्य समाहित होकर ऐसी रीति से विद्या और सुशिक्षा करें कि जिससे विद्यार्थी की आत्मा के भीतर सुनिश्चित अर्थ होकर उत्साह ही बढ़ता जाय। आचार्य भी ऐसी चेष्टा वा कर्म कभी न करें कि जिसको देख वा करके विद्यार्थी अधर्मयुक्त हो जावें इसके अतिरिक्त हस्तक्रिया, यन्त्र, कलाकौशल, विचार आदि से विद्यार्थियों के आत्मा में पदार्थ इस प्रकार साक्षात् करावें कि एक के जानने से हजारों पदार्थ यथावत् जानते जायं।[19] दयानन्द ने अपनी शिक्षा पद्धति में निम्नलिखित तत्वों पर विशेष रूप से बल दिया है-

1. **माता-पिता : प्रथम शिक्षक -**

स्वामी दयानन्द सरस्वती नेअपनी शिक्षा पद्धति में विद्यार्थी के बौद्धिक, आत्मिक, भावनात्मक एवं शारीरिक विकास के लिए सर्वप्रथम गुरु उसकी माता को, द्वितीय गुरु पिता को एवं तत्पश्चात् अध्यापक की भूमिका के विषय में विस्तारपूर्वक चर्चा की है।

दयानन्द के अनुसार-जो अपने-अपने सन्तान और शिष्यों को ईश्वर की उपासना, धर्म, अधर्म, प्रमाण, प्रमेय, सत्य, मिथ्या, पाखण्ड, वेद, शास्त्र आदि के लक्षण और उसके स्वरूप का

यथावत् बोध करा और सामर्थ्य के अनुकूल उनको वेदशास्त्रों के वचन भी कण्ठस्थ कराकर विद्या पढ़ने,आचार्य के अनुकूल रहने की रीति का ज्ञान करवादें कि जिससे विद्याप्राप्ति आदि प्रयोजन निर्विघ्न सिद्ध हों वे ही 'माता-पिता और आचार्य' कहलाते हैं ॥[20]

दयानन्द मानते थे कि बालक के माता और पिता धार्मिक एवं विद्वान् हों। जितना माता से सन्तानों को उपदेश और उपकार पहुंचता है उतना किसी से नहीं।

दयानन्द के अनुसार यही माता पिता का कर्तव्य,कर्म,परमधर्म और कीर्ति का काम है जो अपने संतानों को तन, मन, धन से विद्या,धर्म,सभ्यता और उत्तम शिक्षासे युक्त करें।[21]

2. विद्यार्थी के कर्तव्य एवं दोष -

अपनी लघु पुस्तिका व्यवहारभानु में प्रश्नोत्तरी के माध्यम से दयानन्द बताते हैं कि आचार्य के साथ विद्यार्थी को कैसा व्यवहार करना चाहिए और कैसा व्यवहार वर्जित है?वे कहते हैं कि विद्यार्थी को चाहिए मिथ्या को छोड़कर सदैव सत्य बोले,सरल रहे,अभिमान न करे,गुरु की आज्ञा का पालन करे,स्तुति करे,निंदा न करे,गुरु से सदैव नीचे आसन पर बैठे,शांत रहे चपलता न करे,आचार्य द्वारा डांटे जाने पर भी प्रसन्न रहे,कभी क्रोध न करे,जब भी गुरु कुछ पूछे तो हाथ जोड़कर विनम्रता से उत्तर दे,घमंड से ना बोले,जब वह शिक्षा दे तो ध्यान से सुने उसे मजाक में न उड़ाए, शरीर और वस्त्रों को शुद्ध रखे,जो कुछ भी प्रतिज्ञा करे उसको पूर्ण करे,इंद्रियों को जीतने वाला हो,चंचल व्यवहार न करे,उपकार करने वाले के प्रति कृतज्ञ रहे,जिस-जिस कर्म से विद्या की प्राप्ति हो उस कर्म को करता जाए,जिन बुरे कामों से काम,क्रोध,लोभ,मोह,भय और शोक आदि विद्या के विरोधी अवगुण उत्पन्न हो उन कामों को छोड़कर सदैव ही उत्तम गुणों की कामना करें।[22]

3. शिक्षा का माध्यम एवं मातृभाषा -

शिक्षण के माध्यम के विषय में दयानन्द ने सर्वाधिक महत्त्व संस्कृत भाषा को दिया। जबकि शिक्षा प्राप्त करने के लिए प्राथमिक माध्यम-भाषा,व्यवहारभाषा और राजभाषा के रूप में आर्यभाषा (हिन्दी) को महत्त्व दिया है। इनके साथ-साथ उन्होंने मातृभाषा तथा विश्व की अंग्रेजी आदि विदेशी भाषाओं की यथायोग्य-उपयोगिता-आधारित शिक्षा को भी आवश्यक माना है। मातृभाषा से लेकर विदेशी भाषा तक के अध्ययन का निर्देश देने से दयानन्द की शिक्षा-सम्बन्धी दूरदर्शिता एवं उदारता का परिचय मिलता है।[23]

सत्यार्थ प्रकाश के दूसरे समुल्लास में दयानन्द ने शिक्षा की भाषा पर चर्चा करते हुए कहा है कि जब पांच 5 वर्ष के लड़का लड़की हो तो तब देवनागरी अक्षरों का अभ्यास करावें। इसके साथ ही अन्य देशी भाषाओं के अक्षरों का भी।[24]

इसके साथ ही मातृभाषा को सबसे अधिक महत्व देते हुए दयानन्द कहते हैं कि जिस बालक-बालिका की जो भी मातृभाषा है, चाहे वह स्वदेश में बोली जाने वाली गुजराती, मराठी, बंगला, तमिल, कन्नड़ आदि है अथवा विदेश में बोले जाने वाली अंग्रेजी,उर्दू,फारसी आदि हैं। उनका भी ज्ञान बालक को होना चाहिए।यह बहुत ही स्वाभाविक और मनोवैज्ञानिक बात है कि बालक पहलेमातृभाषा ही सीखता-समझता है। उसी से उसका व्यवहार सम्पन्न होता। अतः उसका

ज्ञान आवश्यक है।

4. विद्यालय का वातावरण एवं परिवेश -

स्वामी दयानन्द ने अपनी शिक्षा-पद्धति में पाठशालाओं,गुरुकुलों अथवा आश्रमों की स्थापना के विषय में कुछ विशेष व्यवस्थाएं दी हैं। कोई भी पाठशाला अथवा गुरुकुल एकान्त देश में होना चाहिये अर्थात् उसके आस-पास कोई इस प्रकार का वातावरण नहीं होना चाहिये जिससे छात्र-छात्राओं के अध्ययन,एकाग्रता,अनुशासन,उपासना आदि में विघ्न उपस्थित हो। गांव या नगर से उनकी दूरी एक योजन अर्थात् चार कोश (लगभग १२-१३ मील) दूर होनी चाहिये। इसका अभिप्राय यह है कि वे गांव नगर की चकाचौंध,चहल-पहल आदि से दूर होने चाहियें।दयानन्दसह-शिक्षाके विरोधी थे।उनके अनुसार लड़के-लड़कियों की सहशिक्षा नहीं होनी चाहिये। उनके गुरुकुलों की दूरी दो कोश (लगभग ६-७ मील) होनी चाहिये। लड़कों के गुरुकुल में सभी अध्यापक और भृत्य पुरुष हों,लड़कियों के गुरुकुल में सभी महिलाएं। यहां तक कि पांच वर्ष के बालक-बालिका भी एक-दूसरे के गुरुकुल में न जायें। इन सब व्यवस्थाओं का कारण यह है कि लड़के-लड़की पूर्ण विद्याकाल तक पारस्परिक आकर्षण से बचे रहें। उनमें किसी प्रकार का मनोविकार पैदा न हो और अध्ययन मनन में विघ्न न आये।[25]

5. अनुशासन एवं दण्ड -

अनुशासन के संबंध में स्वामी दयानन्दसरस्वती ने प्राचीन भारतीय परम्परा का समर्थन किया है। वेगुरु और शिष्य दोनों को अनुशासन में रहने का निर्देश देते हैं।स्वामी दयानन्द सरस्वती के अनुसार विद्यार्थी और शिक्षार्थी दोनों के जीवन में अनुशासन का एक समान महत्त्व है। दोनों यथार्थ आचरण एवं सत्याचार से सत्य विद्याओं का अध्ययन एवं अध्यापन करें,तपस्वी अर्थात् धर्म अनुष्ठान करते हुए वेदादि शास्त्रों को ग्रहण करें। बाह्य इंद्रियों को बुरे आचरणों से रोक कर पढ़ें और पढ़ाते जाएं,मनको सब प्रकार के दोषों से हटाएं।[26]

स्वामी दयानन्द सरस्वती ने सत्यार्थ प्रकाश में स्पष्ट उद्घोष किया है कि जो माता-पिता और आचार्य संतान और शिष्यों का ताड़न करते हैं ये जानो अपने संतान और शिष्यों को अपने हाथ से अमृत पिला रहे हैं और जो सन्तानों और शिष्यों का लाडन करते हैं वे अपने संतानों और शिष्यों को विष पिला के नष्ट भ्रष्ट कर देते हैं क्योंकि लाड से संतान और शिष्य दोषयुक्त तथा ताडन से गुणयुक्त होते हैं। परन्तु माता पिता तथा अध्यापक लोग ईर्ष्या-द्वेष से ताडन न करें किन्तु ऊपर से भय प्रदान और भीतर से कृपा दृष्टि रखें।[27]

6. स्त्री शिक्षा -

प्राचीन वैदिक युग में स्त्रियों की स्थिति प्रायः पुरुषों के समान होती थी। स्त्री को पुरुष की सहधर्मिणी माना जाता था और यह समझा जाता था कि स्त्री के बिना पुरुष का कोई यज्ञ व धार्मिक कृत्य पूरा नहीं हो सकता। स्त्रियाँ भी पुरुषों के समान विद्याध्ययन करती थीं और सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक और धार्मिक जीवन में उनका हाथ बँटाती थीं।[28]

सत्यार्थप्रकाश के अतिरिक्त अपने अन्य ग्रंथों में भीदयानन्द ने अनेक स्थानों पर स्त्री शिक्षा की महत्ता एवं उपयोगिता का निरूपण किया है। उदाहरण के लिए-

"कन्याओं को चाहिए कि ब्रह्मचर्य से विद्या और सुशिक्षा को समग्र ग्रहण करके अपनी बुद्धियों को बढ़ावें।" (यजुर्वेद भाष्य २०/८६) "जो स्त्रियों के बीच में विदुषी स्त्री हो वह सब स्त्रियों को सदा सुशिक्षा करे जिससे स्त्रियों में विद्या की वृद्धि हो।[29]

इस प्रकार स्वामी दयानन्द ने स्त्री के लिए शिक्षा,समाज में सम्माननीय स्थान एवं समान अवसरों का आह्वान किया है।

7. योग शिक्षा का विशेष महत्व -

स्वामी दयानन्द सरस्वती नेअपनी शिक्षा पद्धति में योग को भी महत्वपूर्ण स्थान दिया जिससे विद्यार्थी न केवल मानसिक एवं आध्यात्मिक रूप से सक्षम एवं सशक्त हो बल्कि शारीरिक रूप से भी वे पूरी तरह से सबल हों।

सत्यार्थ प्रकाश के तृतीय समुल्लास में दयानन्द कहते हैं प्राणायाम से बल पुरुषार्थ बढ़कर बुद्धि तीव्र व सूक्ष्म रूप हो जाती है और बहुत कठिन और सूक्ष्मविषय को शीघ्र ग्रहण करती है। इससे मनुष्य शरीर में वीर्य बुद्धि को प्राप्त होकरस्थिर बल-पराक्रम,जितेन्द्रियता,सब शास्त्रों को थोड़े ही काल में समझकर उपस्थितकर लेगा। इस प्रकार दयानन्द के मतानुसार योग के माध्यम से विद्यार्थी अपने समस्त इंद्रियों को नियंत्रित कर सकता है।[30]

8. शिक्षा की सार्वभौमिकता -

दयानन्द ने सर्वप्रथम समान रूप से सबके लिए अनिवार्य शिक्षा का समर्थन किया चाहे वह निर्धन हो या फिर धनी, स्त्री हो या पुरुष। उनके अनुसार सबको तुल्य वस्त्र, खानपान, आसन दिए जाएं चाहे वह राजकुमार या राजकुमारी हो,चाहे दरिद्र की संतान हो, सबको तपस्वी होना चाहिए।[31] इस प्रकार दयानन्द ने सबके लिए समरूप परिश्रम, अनुशासन एवं अवसरों का आह्वान किया।

- **निष्कर्ष :-**

आत्मावलोकन के लिए शिक्षा आज भी एक सशक्त माध्यम है। भारत की वर्तमान शिक्षा पद्धति का इतिहास वैदिक युग से ही प्रारम्भ होता है। यदि भारत का पुरातन साहित्य एवं संस्कृति एक संचित निधि है तो इस निधि को युवा वर्ग तक पहुंचाना अत्यंत आवश्यक है। दयानन्द की शिक्षा पद्धति का मुख्य उद्देश्य मानव मात्र की उन्नति था। इसलिए उन्होंने वैदिक शिक्षा पद्धति को आधार बनाकर अपनी शिक्षण पद्धति प्रस्तुत की जिसमें जीवन के व्यावहारिक पक्षों पर विशेष बल दिया गया। नारी शिक्षा, निःशुल्क शिक्षा, मूल्यपरक शिक्षा, नैतिक शिक्षा, सर्वशिक्षा इत्यादि दयानन्द शिक्षा पद्धति के ऐसे महत्वपूर्ण सिद्धांत हैं जिन्हें सर्वप्रथम दयानन्द ने प्रतिपादित किया और इनका वर्तमान शिक्षा पद्धति में महत्वपूर्ण स्थान है। भारतीय वर्तमान शिक्षा पद्धति को आगामी पीढ़ी में मानवीय गुणों को विकसित करने के लिए विशेष प्रयास करने होंगे ताकि युवा भविष्य की चुनौतियों के लिए सक्षम बन सकें। वस्तुतः स्वामी दयानन्द ने वैदिक शिक्षा पद्धति एवं उस समय प्रचलित शिक्षा पद्धति का समायोजन करने का प्रयास किया था ताकि विद्यार्थियों को अधिक से अधिक लाभ प्राप्त हो सके एवं वे वेदों और भारतीय संस्कृति की रक्षा कर सकें।

अत्याधुनिक वैज्ञानिक युग में कोरोना जैसी महामारी की स्थिति पैदा होना और सबका किं

कर्तव्य विमूढ़ होकर रह जाना यहसिद्ध करता है कि परिवर्तन प्रकृति का अटल नियम है। इसलिए मनुष्य को जीवन में प्रत्येक स्थिति का सामना करने के लिए सदैव तत्पर रहना चाहिए। 34 वर्षों के दीर्घ अंतराल के पश्चात आई नई शिक्षा नीति के मुख्य उद्देश्यों में से एक है- भारतीय होने में गर्व पैदा करना।[32] दयानन्द की शिक्षा पद्धति का भी उस समय यही उद्देश्य था।

वस्तुत: दयानन्द की मूल्यपरक शिक्षा पद्धति का मुख्य उद्देश्य मानव मात्र की उन्नति था। दयानन्द ने अपनी रचनाओं,सम्भाषणों,लेखों तथा शास्त्रार्थों के माध्यम से प्राचीन वैदिक ज्ञान एवं मूल्यों को पुनःस्थापित करने के भरसक प्रयास किए। इसीलिए उन्होंने 'वेदों की ओर लौटो' का उद्घोष दिया। अद्यतन भी हम पुरातन और नवीन शिक्षा पद्धति के सामंजस्य से ऐसी मूल्यपरक शिक्षा पद्धति का निर्माण कर सकते हैं जो प्रचलित शिक्षा में गुणात्मक संशोधन की संभावनाओं को प्रबल कर सकता है।

इस प्रकार दयानन्द ने तत्कालीन परिस्थितियों के अनुसार ऐसी मूल्यपरक शिक्षा पद्धति प्रस्तुत कीजो विद्यार्थियों में मानवीय मूल्यों का विकास करके उनके व्यक्तित्व निर्माण में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सके।

- **सन्दर्भ सूची -**

1. कुमार, सुरेंद्र (डा.) महर्षि दयानन्द वर्णित शिक्षा पद्धति (महर्षि के शब्दों में, अनुशीलन सहित), वैदिक अनुसंधान सदन, दिल्ली, पृष्ठ 75.
2. व्यवहारभानु, पृष्ठ-174.
3. व्यवहारभानु, पृष्ठ-13.
4. महर्षि दयानन्दवर्णित शिक्षा पद्धति (महर्षि के शब्दों में, अनुशीलन सहित), पृष्ठ-21.
5. अदावाल,सुबोध(डॉ),भारतीय शिक्षा सिद्धांत,गर्ग ब्रदर्स,प्रयाग,पंचम संस्करण, पृष्ठ-29.
6. दयानन्द सरस्वती,(सं 1967)स्वामी,संस्कार विधि,आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट,नई दिल्ली, सं1967, पृष्ठ-11.
7. वही,भूमिका, पृष्ठ-3.
8. स्वमन्त०प्र०, पृष्ठ-27.
9. सत्यार्थ प्रकाश,द्वितीय समुल्लास, पृष्ठ-33.
10. विश्वबंधु,(1967)आर्य दर्पण,विश्वेश्वरानंद वैदिक शोधसंस्थान, होशियारपुर, पृष्ठ-40.
11. मनुस्मृति, 2.10-2.12.
12. आर्य समाज का इतिहास,पृष्ठ-155.
13. सत्यार्थ प्रकाश,दशम समुल्लास, पृष्ठ-177.
14. व्यवहारभानु, भूमिका.
15. सत्यार्थ प्रकाश, पृष्ठ-26,27.
16. वही, पृष्ठ-21,24-26.
17. वही, पृष्ठ-45-46.
18. व्यवहारभानु, पृष्ठ-12.

19. वहीं से, पृष्ठ-14.
20. व्यवहारभानु, पृष्ठ-9
21. यजु०भा०, 23.18
22. व्यवहार भानु,पृष्ठ-11
23. महर्षि दयानन्दवर्णित शिक्षा पद्धति (महर्षि के शब्दों में,अनुशीलन सहित),पृष्ठ-180
24. सत्यार्थ प्रकाश,द्वितीय समुल्लास, पृष्ठ-34
25. वही, पृष्ठ-181
26. सत्यार्थप्रकाश,चतुर्थ समुल्लास, पृष्ठ-67
27. सत्यार्थ प्रकाश,द्वितीय समुल्लास, पृष्ठ-37,38
28. वही
29. आर्य समाज का इतिहास, पृष्ठ-458
30. यजुर्वेद भाष्य, २०,२०/८६
31. सत्यार्थ प्रकाश, तृतीयसमुल्लास, पृष्ठ-40
32. राष्ट्रीय शिक्षा नीति (2020),मानव संसाधन विकास मंत्रालय,भारत सरकार, पृष्ठ-7

*असोसिएट प्रोफेसर, संस्कृत एवं पाली विभाग, पंजाबी विश्वविद्यालय, पटियाला।